



अधूरे वाक्यों का घर

एक संज्ञानात्मक विराम

हर परिवार के अपने राज़ होते हैं।

उनमें से ज़्यादातर कभी कहे नहीं जाते।

वे ठहरावों में जीते हैं।

वे उन बातों के भीतर छिपते हैं जिन पर कोई नहीं लौटता।

वे मेज़ की कुर्सियों पर बैठे रहते हैं, और उनका परिचय कभी नहीं कराया जाता।

मैं एक ऐसे घर में बड़ा हुआ जिसे अधूरे वाक्यों ने गढ़ा था।

किसी की नीयत नुक़सान पहुँचाने की नहीं थी।

यही बात परिवार के इतिहास को इतना पेचीदा बना देती है।

सबसे गहरे असर अक्सर बिना किसी इरादे के आते हैं।

पिता हमेशा शब्दों से नहीं सिखाता।

माँ हमेशा नसीहत से नहीं सिखाती।

कभी-कभी वे बस सहते रहकर सिखाते हैं।

कभी-कभी चुप रहकर सिखाते हैं।

कभी-कभी उन डरों से सिखाते हैं जिनका वे कभी ज़िक्र नहीं करते।

बचपन में ही मैं देखने वाला बन गया।

मैं ध्यान से सुनता था।

चेहरों के भाव देखता था।

मिज़ाज पढ़ता था।

अर्थशास्त्र, राजनीति या रिश्तों को समझने से बहुत पहले मैं माहौल को समझने लगा था।

मुझे पता चल जाता था कि कमरे में तनाव कब दाख़िल हुआ।

मुझे पता चल जाता था कि मायूसी कब मेज़ पर आ बैठी।

मुझे पता चल जाता था कि कोई कब ऐसा बोझ ढो रहा है जिसे वह नाम नहीं दे सकता।
परिवार नक्शे बनाते हैं।
सड़कों के नक्शे नहीं।
व्यवहार के नक्शे।
ये नक्शे हमें बताते हैं कि हम कहाँ बोल सकते हैं और कहाँ हमें चुप रहना चाहिए।
वे बताते हैं कि कौन-सी भावनाएँ क्रबूल हैं।
कौन-सी भावनाएँ खतरनाक हैं।
कौन-सी भावनाएँ छिपानी ही होंगी।
बरसों तक मैं उन्हीं नक्शों पर चलता रहा।
इसलिए नहीं कि मैं उनसे सहमत था।
इसलिए कि मेरे पास बस वही नक्शे थे।
बहुत बाद में जाकर मैंने समझा कि विरासत शायद ही कभी माल-असबाब की होती है।
सबसे ताक़तवर विरासत छिपकर आती है।
एक डर।
एक आदत।
एक भूमिका।
एक चुप्पी।
और एक दिन, अगर किस्मत साथ दे, तो हम उस विरासत को देखते हैं और एक सीधा-सा सवाल पूछते हैं:
क्या मुझे इसे आगे सौंपना ही है?
उसी सवाल से आज़ादी की शुरुआत हुई।

फर्दिनांदो